

विकास के लिए आक्रामकता*

रघुराम जी. राजन

विश्व में तेजी से विकास करने के क्षेत्र बहुत कम हैं, और उस पर आइएमएफ ने हाल के दिनों में अपने विकास के पूर्वानुमानों को लगातार कम किया है। धीमे विकास का यह समय खासतौर से खतरनाक है क्योंकि औद्योगिक राष्ट्र एवं उभरते बाजार दोनों को उंची विकास-दर चाहिए ताकि घरेलू स्तर पर बढ़ते राजनैतिक तनाव को समाप्त कर सकें। इन परिस्थितियों में बजाय नई विकास दर बनाने से यह बेहतर होगा कि ऐसी नीतियां बनाई जाएं जो अन्य की तुलना में विकास-दर का रुख बदल सकें। यहां तक कि यदि हम विकास को बनाए रखने के लिए हालात पैदा कर भी लेते हैं, तो भी हमें खेल के नये नियम चाहिए, जिनका प्रवर्तन बहुपक्षीय संगठनों द्वारा निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय जिम्मेदारियों का पालन कर रहे हैं।

पारंपरिक निदान और उपचार

विश्व के लिए महामंदी से पहले की वृद्धि दर बहाल करना इतना मुश्किल क्यों हो रहा है? इसका स्वाभाविक उत्तर यह है कि महामंदी के पूर्व जो वित्तीय तेजी थी उसने औद्योगिक राष्ट्रों को कर्जदार बना दिया और कर्ज चाहे जिसपर हो, सरकार पर, गृहस्थों पर अथवा बैंकों पर, वह वृद्धि-प्रक्रिया को रोक लेता है। जहां इसका इलाज यह है कि कर्ज को माफ कर दिया जाए ताकि कर्जदार से कर्ज की मांग बनी रहे, लेकिन यह बहस का मुद्दा है कि क्या अतिरिक्त कर्ज देकर मांग पैदा कर लेना दीर्घकाल में वहनीय है। किसी भी दर पर, बड़े पैमाने पर कर्ज को बट्टे खाते डालना (अथवा अत्यधिक कर्जदार को राजकोषीय अंतरण करके) राजनैतिक दृष्टि से कठिन है भले ही आर्थिक दृष्टि से वैसा किया जाना वांछित हो।

* डॉ. रघुराम जी. राजन, गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा 19 मई 2015 को इकॉनॉमिक क्लब ऑफ न्यूयार्क में दिए गए वक्तव्य। डॉ. राजन ने डॉ. प्राची मिश्रा के प्रति धन्यवाद ज्ञापित किया है उनके अभिमत और अनुसंधान संबंधी सहायता बहुत उपयोगी थी।

¹ रोचक साक्ष्य आतिफ मियां और आमिर सूफी, हाउस आफ डेट (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी, 2014) तथा केरमन रेनहार्ट एवं केनेथ रागाफ के सीमा-पार, साक्ष्य के लिए 'यह समय अलग है' (प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी 2008) देखें। विश्व वित्तीय संकट और नीतिगत उपाय पर समग्र स्थिति देखने के लिए मार्टिन वूल्फ की 'द शिफ्ट एंड द साक्स : वित्तीय संकट से हमने क्या सीखा और क्या सीखना है (पेंगुइन यूएसए 2015) देखें।

भला किस प्रकार से कमजोर गृहस्थ और सरकारी मांग को ऑफसेट किया जा सकता है जब कर्ज माफ करने की प्रक्रिया नदारद हो? आदर्श स्थिति यह होगी कि निवेश को प्रोत्साहित किया जाए और कम ब्याज दर तथा कर में छूट देते हुए रोजगार पैदा किए जाएं। लेकिन यदि लंबे समय तक कर्जदार बने रहने से उपभोक्ता की अंतिम मांग देर तक कमजोर बनी रहती है तो नये निवेश पर वास्तविक प्रतिफल धराशायी हो सकता है। विकसेलियन न्यूट्रल रियल रेट - साधारण शब्दों में ऐसी ब्याज दर जो अर्थव्यवस्था को वापस पूर्ण रोजगार की स्थिति में लाए तथा मुद्रास्फीति संतुलित हो - यहां तक कि अत्यधिक ऋणात्मक भी हो सकती है।² इस स्थिति के अजीब तरीके से आक्रामक मौद्रिक नीति का आधार बना लिया गया है। क्योंकि नीतिगत दरों को काफी नीचे लाकर शून्य के नीचे नहीं लाया जा सकता है (हालांकि यूरोप के कई देश इस सीमा के लिए भी परीक्षण कर रहे हैं), दीर्घकालिक साम्य ब्याज दरें उस स्तर से अधिक हो सकती हैं जो निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक स्तर है। इसलिए केंद्रीय बैंकों ने गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति (यूएमपी) पर जोर दिया है जो दीर्घकालिक दरों को सीधे ही कम करेगी।

सरकार के लिए मांग को कायम रखने का एक अन्य तरीका यह है कि उसमें खर्च को बढ़ाने के लिए उधार लेने की कितनी क्षमता है। चूंकि इससे सरकारी कर्ज जो पहले से ही अधिक है, और अधिक बढ़ जाएगा, इसलिए इस तरीके को सुझाने वालों की राय है कि मूलभूत सुविधाओं में निवेश किया जाए जिससे आगे ऊंचा प्रतिफल मिल सकता है क्योंकि आज निर्माण लागत और ब्याज दरें कम हैं। लेकिन, उन्नत राष्ट्रों में ऐसी मूलभूत सुविधा का पता लगाना एवं कार्यान्वयन मुश्किल है जिसमें उच्च प्रतिफल के लिए निवेश किया जा सके क्योंकि इस प्रकार के निवेश वहां पहले ही किए जा चुके हैं। राजनैतिक प्रभाव की संभावना होती है जिसमें ब्रिज बनते हैं जो कहीं नहीं होते हैं अथवा बुनियादी सुविधा के रूप में तीव्र गति की अलाभकारी ट्रेनें चलाना। जहां हर कोई यह महसूस कर रहा है कि विद्यमान मूलभूत सुविधाओं के रिपेयर और नवीकरण की आवश्यकता है, जिसके लिए बहुत बड़ी

² इसके लिए क्लाडियोबेरियो एंड पिटी डिसयाटाट के चिंतनपरक अंश को <http://www.voxeu.org/article/न्यून-ब्याज-दर-समान-गतिरोध-और-ऋण-देखें> जिसमें सुझाया गया है कि वास्तविक न्यूट्रल ब्याज दर, न्यून नीति दर से प्रभावित हो सकती है। अनुमान से, लेखक का तर्क है कि न्यून नीति दर गलत निवेश, वित्तीय दबाव तथा कर्ज के बने रहने की स्थिति के बीज बो सकती है, और ये सब मिलकर निवेश पर भावी वास्तविक प्रतिफल को नीचे ले जा सकते हैं, यही वजह है कि आज की दीर्घकालिक वास्तविक न्यूट्रल दर है।

परियोजनाओं के बजाय विकेंद्रीकृत व्यय की आवश्यकता है और इसके लिए पहल कर पाना तथा केंद्र से वित्त लेना कठिन हो सकता है।

दूसरे शब्दों में, ऐसी मूलभूत सुविधाओं में निवेश करना जिनमें प्रतिफल बहुत अधिक हो, बहुत अच्छी आइडिया है किंतु, अधिकांश उन्नत देशों की सरकारों के लिए इसे बड़े पैमाने पर कार्यान्वित कर पाना कठिन है। जहां तक इस तरह के कर्ज से खर्च को बढ़ावा मिलता है, वहीं यह विश्वास और गतिविधियों का एक स्वतःपूर्ण चक्र बनाता है जो वृद्धि दर को बनाए रखने का सेतु बन सकता है। लेकिन इस सीमा तक पूंजी का गलत इस्तेमाल हो जाता है (क्योंकि ऐसी परियोजनाएं बहुत कम हैं जिनमें शावेल चक्र घुमाने के लिए तैयार हों, इस प्रकार का इतना अधिक आपात खर्च मात्र किराया लेने वाले स्थान में बदलकर रह जाएगा), इससे लोगों की भविष्य के बारे में जिज्ञासाएं बदतरनी हो जाएंगी, इससे कापेरिट निवेश कम होगा और गृहस्थों की बचत बढ़ेगी।

इन सब बातों में एक चिंता और भी है। यदि प्रोत्साहन राशि से वृद्धि दर अस्थायी रूप से बढ़ भी जाती है - और ऊपर की चर्चा से यह पता चलता है कि वृद्धि दर नहीं बढ़ेगी - इसलिए इस वृद्धि दर को एक ऐसा सेतु होना चाहिए जो सकल मांग को बनाए रखे। लेकिन, यदि ऐसा नहीं हुआ तो क्या?

उत्पादकता पहली, लगातार गतिरोध और अन्य चिंताएं

अभी-अभी मैंने जिन कार्रवाई के बारे में चर्चा की है वे ऐसी अर्थव्यवस्था के लिए लागू होती हैं जहां सैद्धांतिक रूप से शायद कर्ज की अतिशयता के अलावा और कुछ भी बुरा नहीं है - जरूरत इस बात की है कि वृद्धि की जो क्षमता है उसमें से वृद्धि चक्र-दर-चक्र निकलकर आए। राबर्ट गार्डेन और लॉरी समर्स ने यह संभावना प्रकट की थी कि औद्योगिक राष्ट्रों में वृद्धि की संभाव्यता महामंदी के पहले ही कम हो गई थी। शायद तब वह वृद्धि दर जिसे हम वापस पाना चाहते हैं उस समय बिना गंभीर जोड़-तोड़ के प्राप्त करना संभव न रहा हो।

लॉरी समर्स द्वारा मौजूदा सतत आर्थिक मंदी की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए 'एक समान गतिरोध' शब्द का प्रयोग किया गया था, जिससे आलविन हैनसन द्वारा 1938 में महामंदी के दौरान दिए गए भाषण के स्वर सुनाए देते हैं।³ किंतु अलग-अलग अर्थशास्त्री

³ एल. समर्स (2014), 'अमरीकी आर्थिक संभावनाएं : समान गतिरोध, हिस्टेराइसिस एंड शून्य से नीचे की ओर' विषय पर नेशनल एसोसिएशन फॉर बिजनेस इकॉनॉमिक्स, इकॉनॉमिक पॉलिसी कान्फ्रेंस में 24 फरवरी, 2014 को दिया गया भाषण।

गतिरोध के बारे में विभिन्न पहलुओं और कारणों पर फोकस करते हैं।⁴ समर्स अपर्याप्त कुल मांग पर जोर देता है, और सच्चाई यह है कि दरें शून्य की ओर होने तथा वित्तीय अस्थिरता की संभाव्यता मौद्रिक नीति को बहुत अधिक सक्रिय नहीं होने देती है। कुल मांग के कमजोर होने का यह भी कारण है कि ज्यादातर जनसंख्या बूढ़ी हो रही है जो कम खाती है और बहुत अमीर लोगों की आय बढ़ रही है जिनकी खाने की सीमांत मात्रा बहुत कम है।

दूसरी ओर, टेलर कोबेन और राबर्ट गार्डेन ने आपूर्ति की कमजोर क्षमता पर जोर दिया है।⁵ उनका कहना है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का समय विपथन का समय था क्योंकि औद्योगिक राष्ट्रों में वृद्धि दर को सहायता पुनर्निर्माण, प्रौद्योगिकी के फैलाव जैसे बिजली, टेलीफोन, आटोमोबाइल उच्चतर शैक्षिक प्राप्ति, उच्च श्रमिक सहभागिता क्योंकि कार्यबल में महिलाओं का प्रवेश हुआ, विश्व व्यापार की बहाली, पूंजी में बढ़ते हुए निवेश से प्राप्त हुई थी। लेकिन, युद्ध के पश्चात उत्पादन कारकों से कुल मिलाकर उत्पादकता वृद्धि - जिसमें उसका कुछ हिस्सा नई आइडिया तथा उत्पादन के नये तरीकों से प्राप्त हुआ था - 1920-50 की उसकी उच्च वृद्धि से कम थी। हाल में, न केवल उत्पादकता वृद्धि और भी कम हुई है (1990 के दशक के अंत में सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति के कारण अस्थायी रूप से थोड़ा धनात्मक उठान थी), किंतु शिक्षा के स्तर में ठहराव आ जाने एवं श्रमिक सहभागिता कम होने तथा कुछ देशों में आबादी वृद्ध होने के कारण मजदूरों की संख्या कम होने से भी वृद्धि दर बाधित हुई है।

इन कारकों की सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि कुल मांग कमजोर होने के प्रभाव को आपूर्ति की धीमी वृद्धि क्षमता से अलग कर पाना मुश्किल है। वृद्धि होती जनसंख्या इन दोनों में भागीदार है। वस्तुतः, एक दूसरे का कारण बन सकता है। उदाहरण के लिए, वृद्धि की क्षमता में यदि धीमापन रहने की उम्मीद की जाती है तो गृहस्थ जिसे पेंशन न मिल पाने तथा पात्र स्वास्थ्य सुविधा न मिलने की चिंता में बचत करना चाहेगा और उस बचत को बढ़ाना चाहेगा। इससे मांग और भी प्रभावित होगी। इसके विपरीत, प्रत्याशित कमजोर मांग

⁴ उदाहरण के लिए देखें - 'लोकतांत्रिक पूंजीवाद का संकट' वूल्फगैंग स्टीक, न्यूलेफ्ट रिब्यू 71, सितंबर/अक्टूबर 2011 अथवा 'मंदी से हासिल वास्तविक सबक : बहाली के लिए पश्चिम मनमाने ढंग से उधार लेकर खर्च नहीं कर सकता', रघुराम राजन, विदेश कार्य मंत्रालय, अंक 91, सं.3, मई/जून 2012

⁵ टायलर कावेन (2013), महा गतिरोध, ईबुक, आर.गार्डेन (2012), 'क्या अमरीकी अर्थव्यवस्था की वृद्धि समाप्त हो चुकी है? लड़खड़ाते नवोन्मेष को छह प्रतिशत का सामना'।

नियमों के लिए भौतिक एवं मानवपूंजी में निवेश करने के प्रोत्साहन को कम करेगी जिसके कारण आपूर्ति में वृद्धि और भी धीमी हो जाएगी।

संरचनागत सुधार इस प्रकार के होते हैं जिनमें स्पर्धा बढ़ जाती है, नवोन्मेष का संचार होता है, और उससे संस्थागत परिवर्तन आता है और यही वह तरीका है जिससे वृद्धि की क्षमता का संवर्धन होता है। लेकिन इससे उन संरक्षित क्षेत्रों को तत्काल रूप से क्षति पहुंचती है जो यथास्थिति में रहते हुए किराया वसूलने के आदी बने रहते हैं। इन क्षेत्रों को पहुंचने वाला फायदा बाद में होता है जो अनिश्चित भी होता है जबकि उसका दर्द तात्कालिक होता है और परिवर्तन की घटना बिल्कुल स्पष्ट होती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए जब जीन-क्लाड जन्कर, तात्कालिक लुकजमबर्ग प्रधानमंत्री ने यूरो संकट की चरम स्थिति पर पहुंच जाने पर कहा था कि, “हम सभी जानते हैं कि क्या करना है, लेकिन हमें यह ज्ञात नहीं है कि परिवर्तन की कार्रवाई कर लेने के बाद हम दुबारा चुनकर किस प्रकार वापस आएंगे।”

संवृद्धि की अनिवार्यता

यदि वास्तव में मौलिक सिद्धांत इस प्रकार के हैं कि औद्योगिक जगत अब तक धीमी गति से विकास करता रहा है और तब तक करता रहेगा जब तक नई प्रौद्योगिकी और नये बाजार वृद्धि की रक्षा के लिए इस्तेमाल नहीं किए जाते, क्या राजनैतिक रूप से धीमी विकास दर पर ही संतुष्ट रहना आसान रहेगा? अंततः औद्योगिक राष्ट्रों की प्रति व्यक्ति आय काफी अधिक है, और कुछ वर्षों तक वृद्धि की धीमी दर से सकल स्तर पर कुछ खास नुकसानदेह नहीं होगा। संवृद्धि के लिए इतनी अधिक राजनैतिक अपेक्षा क्यों है?

इसका एक कारण सरकारी वचनबद्धता को पूरा करना है। समाजशास्त्री वोल्फगैंग स्ट्रीक लिखते हैं कि 1960 के दशक की तीव्र वृद्धि के वर्षों में जब ‘महान समाज’ का विज्ञान प्राप्य लग रहा था, उस समय औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं ने बड़े पैमाने पर जन साधारण से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के बड़े-बड़े वायदे कर लिए थे।⁶ उसके बाद से कई देशों में राजनैतिक सुविधा के हिसाब से (क्योंकि यह बजट से अलग छुपा होता था) किए जाने वाले वायदे बढ़ते गए किंतु, पेंशन तथा सार्वजनिक क्षेत्र के कामगारों को बुढ़ापे में चिकित्सा सुविधा देने की वचनबद्धता राजकोषीय दृष्टि से अनुचित थी। और हाल में महामंदी के पहले तथा बाद में सरकार द्वारा लिए गए ऋण ने सरकार की वचनबद्धता को बढ़ा दिया है, हालांकि आबादी को

⁶ देखें - लोकतांत्रिक पूंजीवाद का संकट, वोल्फगैंग स्ट्रीक, न्यूलेफ्ट रिव्यू 71, सितंबर / अक्टूबर 2011

बढ़ाने वाली पीढ़ी भारी संख्या में सेवानिवृत्त हो रही है। संवृद्धि के तात्कालिक वायदे के बिना आप देखेंगे कि किए गए इन तमाम वायदों की वचनबद्धता संभाले नहीं संभलेगी।

वृद्धि दिखाने का एक अन्य कारण यह भी है कि अर्थव्यवस्थाएं अंदरूनी व्यक्तियों को फायदा पहुंचाना चाहती हैं - उदाहरण के लिए उन्हें जिनके पास रोजगार पैदा करने के साधन हैं। वृद्धि की धीमी दर के कारण बेरोजगारी की जो हालत पैदा हुई है उसकी जिम्मेदार श्रमिक बाजार में नये लोगों के प्रवेश के कारण है। वे न केवल बड़ी संख्या में बेरोजगार हैं बल्कि जो श्रमिक कठिन परिस्थितियों के कारण श्रमिक बल से जुड़ते हैं उनकी आमदनी आजीवन कम ही रही है। वृद्धि लाने की जरूरत इसलिए है ताकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी समानता बनाए रखी जा सके क्योंकि खासतौर से आज की ये जो पीढ़ी है वह पुरानी पीढ़ी द्वारा किए गए वायदों को पूरा करने के लिए कार्य करेगी। इन परिस्थितियों में यही वे दस्ते हैं जो गली-कूचे तक काम करेंगे क्योंकि वृद्धि सामाजिक समन्वय के लिए जरूरी है।

संवृद्धि के फायदों का वितरण न केवल पीढ़ी-दर-पीढ़ी असमान रहा है बल्कि उनका वितरण एक पीढ़ी के भीतर भी अत्यधिक असमान है। प्रौद्योगिकी के विस्तार और विश्व स्तर पर प्रतिस्पर्धा बढ़ने से, एक जैसा काम रोज-रोज करना, दिमाग वाला काम हो या न हो, इसमें औद्योगिक देशों में काफी कमी आ गई है। इन कार्यों में असेंबली का काम करने वाले कामगारों से लेकर कानूनी सहायता या बीमा लिपिक शामिल हैं, जिन्हें या तो आटोमैटिक बना दिया गया है या फिर आउटसोर्स कर दिया गया है। ऊंची तनख्वाह वाले पसंदीदा कार्य नेमी स्वरूप के नहीं होते और जिनके लिए कौशल की आवश्यकता होती है जैसे सलाहकार या पैप-डिजाइनर, किंतु इसके लिए कौशल की जरूरत है। मध्यम वर्ग के लोगों ने यह समझ लिया है कि उन्हें गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा तथा प्रशिक्षण की जरूरत है ताकि वे पिछड़े न रह जाएं जिससे कि उन्हें कमतर न्यून-कौशल वाले गैर-पसंदीदा कार्य जैसे सुरक्षा गार्ड या माली का काम करने के लिए स्पर्धा करनी पड़े। लेकिन प्रारंभ में उन्हें प्राप्त घटिया किस्म की शिक्षा तथा गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए लागत वहन न कर पाने की मजबूरी अनेक अच्छे लोगों के वश से बाहर की बात हो जाती है। वृद्धि के प्रत्येक प्रतिशत बिंदु के साथ अकुशल या अल्प-कुशल लोगों के लिए यदि कुछ ‘अच्छी’ नौकरी सृजित होती है वो इस दिशा में और अधिक आगे बढ़ने की आवश्यकता है ताकि वे अपनी नौकरी खुशी-खुशी कर सकें। इसी प्रकार संवृद्धि को और आगे बढ़ाने का यह भी एक कारण है कि बेरोजगार लोगों में कौशल तेजी से घटता जा रहा है।

अपस्फीति का भय

अंतिम बात यह है कि औद्योगिक देशों में वृद्धि को और आगे बढ़ाने के लिए प्राधिकारी अपस्फीति के भय से अधिक जोर दे रहे हैं। जापान इसका प्रामाणिक उदाहरण है जहां गलती यह हुई थी कि वह अपस्फीतिकारी स्थिति में चला गया था जो लगातार बनी रही और जिसने वृद्धि की गति को रोक रखा था।

जापान के इस अनुभव पर बारीकी से नजर डालें तो पता चलता है कि यह किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं है कि जापान की वृद्धि उसकी अपेक्षित वृद्धि-दर से कम थी और अपस्फीति ही एकमात्र ऐसा कारण था जिसने वृद्धि को मंद कर दिया था। यह सच है कि जापान ने 1990 के दशक के प्रारंभ में हुए तबाही के संकट के बाद वृद्धि की धीमी दर को लंबे समय तक बने रहने दिया और अपनी बैंकिंग प्रणाली को दुरुस्त करने अथवा अत्यधिक कर्ज में डूबे हुए निगमों की पुनर्रचना के लिए शीघ्र कदम नहीं उठाए। लेकिन जब उसने 1990 दशक के अंत में तथा 2000 दशक के प्रारंभ में निर्णय ले लिया तब जापान की प्रति व्यक्ति या प्रति कामगार आय अन्य औद्योगिक राष्ट्रों के समान हो गई थी (सारणी 1)⁷। जापान की सकल आर्थिक वृद्धि महज इसलिए धीमी हो सकती है क्योंकि उसकी आबादी घट रही है, और बहुत कम लोग ही श्रमिक बल से जुड़ रहे हैं क्योंकि इससे अन्य विकसित अर्थव्यवस्थाओं का निष्पादन कम हो गया है।

अपस्फीति से होने वाले हानिकारक प्रभाव के बारे में क्या होगा? अपस्फीति का एक चिंताजनक प्रभाव यह है कि यदि मजदूरी-स्तर नीचे की ओर ही टिका रहता है तो वास्तविक मजदूरी बढ़ती है और

**सारणी 1 : प्रति व्यक्ति वास्तविक जीडीपी में वृद्धि :
उन्नत अर्थव्यवस्थाएं : 1996-2014**

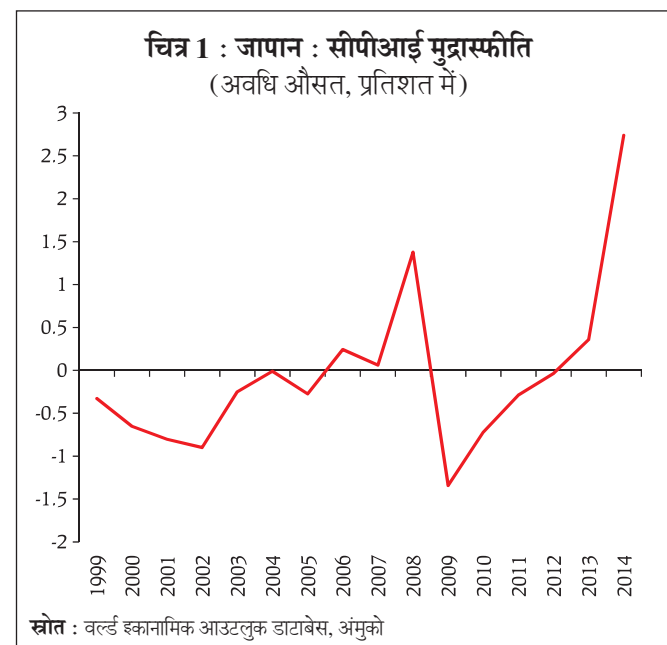
	जापान	अमरीका	यूरो क्षेत्र
1996-2000	0.63	3.10	2.41
2001-2005	1.05	1.56	0.99
2006-2010	0.35	-0.12	0.41
2011-2014	0.91	1.38	0.13

स्रोत : वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक डाटाबेस, अंमुको

⁷ मुझे इन तथ्यों की सबसे पहले जानकारी क्लाड त्रिचेत से मिली। अपस्फीति के बारे में और विस्तार से जानकारी के लिए क्लाडियो बोरिओ, मगडेलेना एरेडम, एंड्रू फिलार्डो एंड बोरिस हाफमन का 'अपस्फीति की लागत : ऐतिहासिक परिदृश्य' बीआइएस तिमाही समीक्षा मार्च 2015 देखें।

उससे बेरोजगार पैदा होता है। इसके बावजूद भी जापान में 2000-2014 के बीच बेरोजगारी का औसत 4.5 प्रतिशत ही था जबकि इसकी तुलना में उसी अवधि में अमरीका में 6.4 प्रतिशत तथा यूरो क्षेत्र में 9.4 प्रतिशत बेरोजगारी थी।⁸ आंशिक रूप से जापानियों ने मजदूरी में लचीलापन प्राप्त कर लिया है और आजीवन बेरोजगारी में बने रहने के पुराने ढर्रे को छोड़कर नये सिरे से छोटी-छोटी अवधि के ठेके की नई किरायेदारी के कार्य को अपना लिया है। वस्तुतः औद्योगिक देशों में यूनिजन की शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ तथा अस्थायी या 'संकट काल' में कार्य करने वाले कामगारों में वृद्धि से निचले स्तर की मजदूरी में लचीलापन पूर्व में किए गए आकलन से कहीं अधिक होगा। जहां इससे सामाजिक लागत तो लगेगी ही, इस प्रकार के लचीलेपन से एक अर्थव्यवस्था अपस्फीति की स्थिति को नियंत्रित करने का सामना कर सकेगी।

एक अन्य चिंता की बात यह रही है कि मुद्रास्फीति के धीमे न्यून चक्र से गंभीर स्वरूप की बड़ी अपस्फीतिकारी स्थिति है, जिसमें सांकेतिक ब्याज दर का झुकाव शून्य की ओर रहता है जो वास्तविक ब्याज दर को अत्यंत ऊंचे स्तर पर बनाए रखती है। एक बार फिर यह स्पष्ट नहीं है कि जापान में ऐसा हुआ था। वर्ष 1999 से 2012 के बीच औसत सीपीआई अपस्फीति 2004 के - 0.01 प्रतिशत से वर्ष 2009 के - 1.3 प्रतिशत के बीच थी, लेकिन उसमें कोई स्पष्ट चक्रीय पैटर्न नहीं था (चित्र 1)।



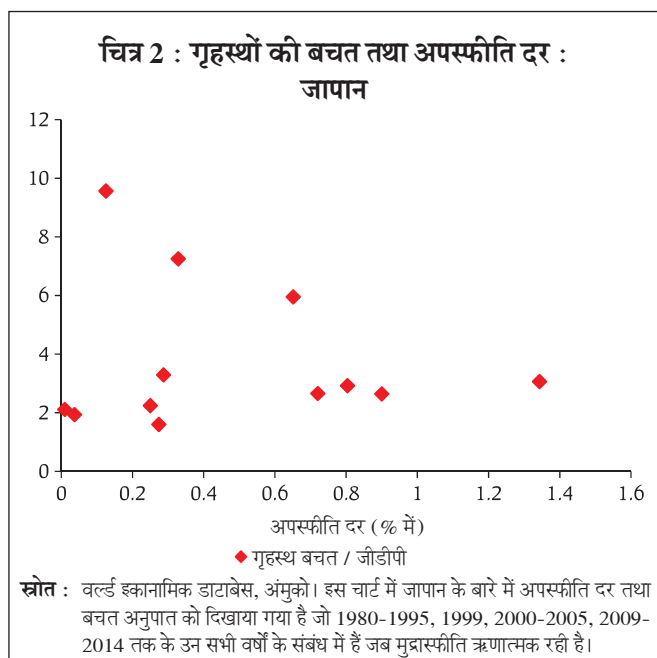
⁸ स्रोत : वर्ल्ड इकॉनामिक आउटलुक डाटाबेस, अंमुको

यद्यपि जब अपस्फीति धीमी होती है तो भी ग्राहक अपनी खरीदारी स्थगित कर देता है और बचत को इस उम्मीद में बढ़ा देता है कि भविष्य में कीमतें कम होंगी, खासतौर से जब शून्य की ओर बढ़ रही दर वास्तविक ब्याज दर को उसके अपेक्षित मूल्य-स्तर से ऊपर बढ़ा देती है। हमने चित्र-2 में गृहस्थों की बचत को दर्शाया है जो जापान में अपस्फीति दर की तुलना में जीडीपी में उसके हिस्से के रूप में दिखाया गया है। पुनः, यह देखना मुश्किल है कि अपस्फीति की ऊंची दर के साथ ऊंची बचत दर का भी पैटर्न एक समान बना रहे।

अंतिम बात यह है कि यह सत्य है कि अपस्फीति वर्तमान कर्ज के वास्तविक बोझ को और बढ़ा देती है, फलतः कर्ज का बने रहना और तीव्र हो जाता है। लेकिन यह स्थिति किसी अप्रत्याशित अपस्फीति में सत्य हो सकती है, किंतु निश्चित अपस्फीति की स्थिति में नहीं। यदि कर्ज जरूरत से ज्यादा बढ़ जाता है तो यह बेहतर होता है कि उसे चारों तरफ समस्त फलक पर फैला देने के बजाय लक्ष्य करके उसकी पुनर्रचना की जाए।

इन सभी तर्कों के बावजूद, अपस्फीति के प्रेत ने केंद्रीय बैंकों को काफी परेशान कर रखा है। जब यह बात अन्य राजनैतिक चिंताओं अर्थात् ऊपर बताई गई धीमी और असमान वृद्धि के साथ उठाई जाती है तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि विकसित देशों में प्राधिकारी धीमी वृद्धि के लिए तैयार नहीं होना चाहेंगे, भले ही उनकी अर्थव्यवस्था की क्षमता उतनी ही क्यों न हो।

अतः, औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं में प्रमुख असमंजस यह है कि सुदृढ़ वृद्धि के लिए राजनैतिक अनिवार्यताओं का समायोजन



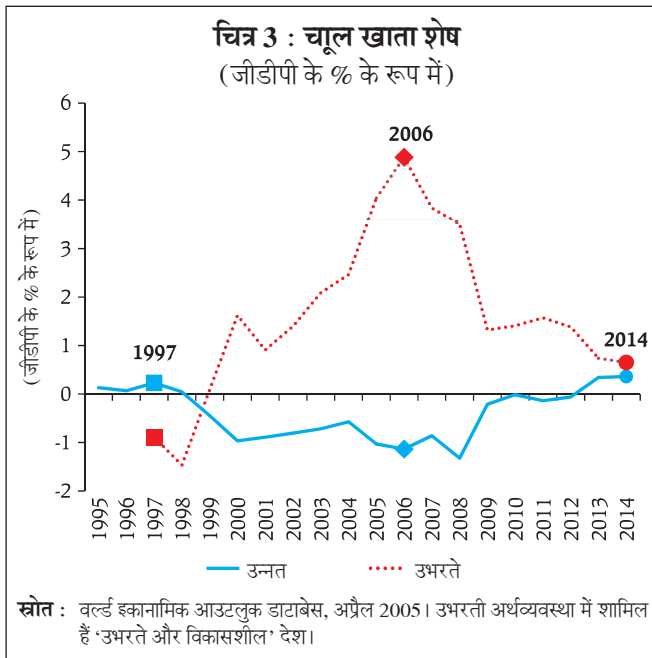
कैसे किया जाए जबकि सच्चाई यह है कि चक्रीय (एक के बाद एक) प्रोत्साहन उपाय भी ऊंची वृद्धि दर बनाए रखने में प्रभावी साबित नहीं हुए हैं, कर्ज को माफ करना राजनैतिक रूप से स्वीकार्य नहीं है और संरचनात्मक सुधार करने का समय सही नहीं है, राजनैतिक दृष्टि से इसे सजा के बदले मजा कहते हैं। लेकिन, वृद्धि का एक अन्य चैनल भी है - निर्यात।

उभरते बाजारों की प्रतिक्रिया

यदि औद्योगिक राष्ट्र धीमी वृद्धि के चक्र में फंस गए हैं तो क्या उभरते बाजार (मैंने इस शब्द का प्रयोग बड़े पैमाने पर विकासशील या फ्रंटियर बाजारों को भी शामिल करते हुए किया है) विश्व में मांग की कमी को पूरा कर सकते हैं? अंततः उभरते बाजारों की एक स्पष्ट जरूरत बुनियादी सुविधाओं में निवेश करने की है, तथा बढ़ती हुई आबादी अंतिम मांग का स्रोत बन सकती है। औद्योगिक राष्ट्र क्यों न उभरते बाजारों को निर्यात करें ताकि उनकी वृद्धि को बल मिले? क्योंकि विगत में उन्होंने ऐसा किया भी है।

उभरते बाजारों में भी औद्योगिक राष्ट्रों की तुलना में वृद्धि की अनिवार्यता कम नहीं है। जहां कुछ उभरते बाजारों ने विगत में वायदे पूरे करने की पात्रता हासिल नहीं की है, वहीं कुछ की आबादी वृद्ध हो रही है जिसके लिए व्यवस्था की जानी है और बहुत से बाजार ऐसे हैं जिनमें युवा, गरीब तथा ऐसे लोग भी हैं जिनकी संवृद्धि के प्रति आकाश की ऊंचाइयों तक की उम्मीदें हैं। सिद्धांततः, उभरते बाजार भविष्य के लिए निवेश करना चाहेंगे, जिसके लिए धन अमीर देशों द्वारा उपलब्ध कराया जाएगा, और इस प्रकार से विश्व की सकल मांग को सहारा मिल सकेगा।

1990 का दशक वस्तुतः ऐसा दशक था जिसमें उभरते बाजारों ने बुनियादी सुविधाओं तथा विकास के वित्त पोषण के प्रयास में शेष विश्व से धन उधार लिए। लेकिन यह प्रयास सफल नहीं रहा, सिर्फ ऋण लेने में तेजी आ गई, पैसे बड़ी-बड़ी गैर-फायदेमंद ऐसी परियोजनाओं में लग गए जो मात्र प्रतिष्ठा के लिए थीं और अंततः सब बिखर के रह गया। 1994 का मेक्सिको संकट, 1997-98 का एशियाई संकट तथा 2001 का अर्जेंटीना संकट इस बात का प्रमाण था कि उभरते बाजार आई हुई विदेशी पूंजी को बड़े पैमाने पर बढ़ते हुए घरेलू निवेश को नियंत्रित करने में असफल रहे। 1990 के दशक का संकट यह था कि उभरते बाजारों का वृद्धि के उद्देश्य से विदेशी पूंजी पर निर्भर रहना खतरनाक था। विवेकपूर्ण तरीके से निवेश घरेलू बचत से करने तक सीमित रहने ने स्वाभाविक रूप से उनकी विश्व के विकास का इंजन बनने की योग्यता को समाप्त कर दिया।



1990 के दशक के संकट के बाद, जैसाकि चित्र 3 में बिंदु-रेखा से प्रदर्शित किया गया है, अनेक उभरते बाजारों ने निवेश में अत्यधिक कमी करते हुए चालू खाते अधिशेष को और बढ़ाने का कार्य किया, और विदेशी मुद्रा का भंडार बढ़ाने लगे ताकि विनिमय संबंधी प्रतिस्पर्धा को कायम रखा जा सके। विश्व की वस्तुओं के लिए और अधिक मांग पैदा करने के बजाय वे स्वयं आपूर्तिकर्ता (अथवा समान रूप से बचतकर्ता) बन गए, और मांग की खोज अन्यत्र करने लगे। और औद्योगिक देशों से लिए गए कर्ज से पैदा की गई मांग, विश्व के वित्तीय संकट के आने से पहले ही, जैसाकि उनके चालू खाता अधिशेष में दिखाया गया है, उभरते बाजारों की वस्तुओं की मांग के रूप में फैल गई। संकट के पूर्व के वर्ष चीन जैसे देशों के लिए प्रचुरता के वर्ष थे जो सीधे ही औद्योगिक देशों की मांग को पूरा कर रहा था, और अफ्रीका के देशों, एशिया तथा लैटिन अमरीका के लिए भी प्रचुरता का वर्ष था जिन्होंने वस्तुओं तथा इंटरमीडिएट वस्तुओं की बिक्री सीधे सप्लाई करने वालों को कर दी।

वर्ष 2005 में फेडरल रिजर्व के गवर्नर बेन बर्नानके ने 'वैश्विक बचत प्रचुरता' नामक शब्दावली का निर्माण किया था जिसका अर्थ होता है चालू खाते का अधिशेष, विशेष रूप से उभरते बाजारों में, जिन्हें अपना रास्ता अमरीका में मिल गया था।⁹ उनका तर्क था कि

⁹ 'वैश्विक बचत प्रचुरता और अमरीकी चालू खाता घाटा', विषय पर गवर्नर बर्नानके द्वारा वीर्जिनिया एसोसिएशन ऑफ इकॉनॉमिस्ट, रिचमंड, वीर्जिनिया में 10 मार्च, 2005 को सैडिज भाषण में की गई टिप्पणियां <http://www.federalreserve.gov/boarddocs/speeches/2005/200503102/>

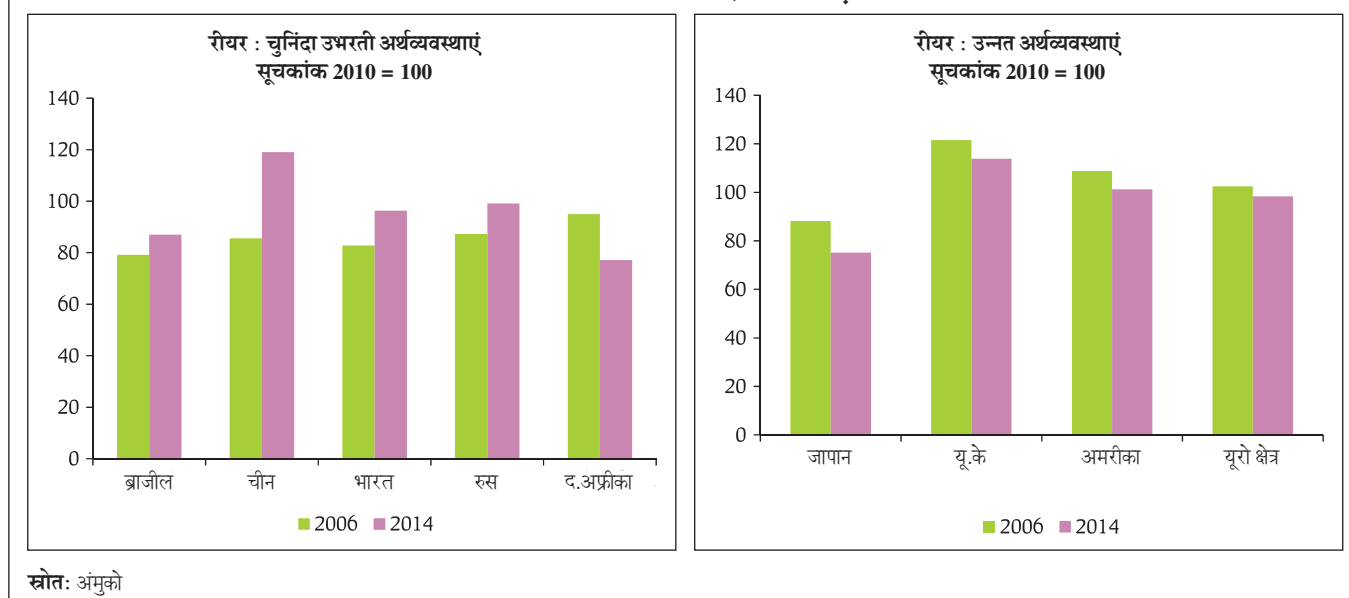
अमरीका में ब्याज की कम दरों के कारण उपभोग में वृद्धि होगी और अमरीका का चालू खाता घाटे की स्थिति में होगा। बर्नानके ने कहा था कि इन प्रवाहों से अमरीका को कई प्रकार के प्रतिकूल परिणाम झेलने पड़ेंगे, साथ ही व्यापार योग्य विनिर्मित वस्तुओं से इतर गैर-व्यापार योग्य वस्तु, जैसे आवास में संसाधनों का गलत तरीके से आबंटन किया जाएगा। उनका सुझाव था कि यह बेहतर होगा यदि अमरीका के चालू खाता घाटा को कम किया जाए, लेकिन उसके लिए पहली जरूरत यह है कि उभरते बाजार अमरीका से कार्रवाई करने की अपेक्षा करने के बजाय विनिमय दर में अपना हस्तक्षेप कम करें।

इस प्रकार, विश्व के वित्तीय संकट से पहले ही उभरते बाजार और औद्योगिक राष्ट्र पूंजी-प्रवाह तथा मांग के खतरनाक संबंधों में क़ैद हो चुके थे और उसने 1990 के दशक में हुए उभरते बाजार के संकट से पूर्व पूरे पैटर्न को समान रूप से पलटकर खतरनाक बना दिया था। उभरते बाजारों के केंद्रीय बैंकों द्वारा लगातार विनिमय दर में हस्तक्षेप तथा औद्योगिक राष्ट्रों में लीवरेज की अतिशय वहनीयता ने अंततः विश्व में आपदा लाने में योगदान दिया। किंतु वित्तीय संकट के बाद पैटर्न पुनः उलट रहा है।

विश्व के वित्तीय संकट जो काफी हद तक 2000 दशक के प्रारंभ में उभरते बाजार के संकट के समान था, के बाद औद्योगिक राष्ट्रों ने अपने उपभोग (जीडीपी के अंश के रूप में) को बढ़ाए बिना अपने निवेश में कटौती कर दी और इस प्रकार उन्होंने विदेशी वस्तुओं की मांग तथा विदेश से वित्तीय सहायता पर निर्भरता कम कर दी। वस्तुतः चित्र 3 में मोटी रेखा से यह पता चलता है कि वर्ष 2013 में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के चालू खाता में अधिशेष की स्थिति थी और यह अनुमान था कि वर्ष 2014 में भी वे अधिशेष की स्थिति में रहेंगे, वर्ष 2008 से लेकर अब तक चालू खाता शेष में लगभग 1.5 प्रतिशत का विचलन हुआ है।

उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में चालू खाते में घाटे की स्थिति (मांग सृजित करने वाला) से अधिशेष की स्थिति (आपूर्ति सृजित करने वाला) में आ जाने से उभरते बाजारों के चालू खाता के अधिशेषों में उसी अवधि में अत्यधिक गिरावट आ गई। उभरते बाजारों में विदेशी वस्तुओं की अपेक्षाकृत बढ़ती हुई मांग इसलिए थी कि 2008 से निवेश में अत्यधिक वृद्धि हुई, बजाय बचत में कमी होने के - 2008 से 2014 के दौरान चालू खाता शेष में जीडीपी के 2.7 प्रतिशत बिंदु तक का शिफ्ट हुआ। इस शिफ्ट से सहायता मिली हो या कठिनाई पहुंची हो लेकिन उभरते बाजारों में वास्तविक प्रभावी विनिमय दर को काफी

चित्र 4 : वास्तविक प्रभावी विनिमय दर उतार-चढ़ाव 2006-2014



प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और औद्योगिक राष्ट्रों में 2006-2014 के बीच दरों में हास हुआ था।

क्या जिस प्रकार से 2000 के दशक के प्रारंभ में उभरते बाजारों के केंद्रीय बैंकों द्वारा लगातार विनिमय-दर में हस्तक्षेप किए जाने के समान औद्योगिक राष्ट्रों के केंद्रीय बैंकों की नीतियों द्वारा इस चालू खाता के समायोजन कार्य को संचालित किया गया था? जो लोग इस संभवतः या हो सकता था कहेंगे वे मोटे तौर पर गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियों के मानने वाले कहलाएंगे।

गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति

गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियों में दोनों प्रकार की नीतियां शामिल हैं जिनमें केंद्रीय बैंक ब्याज दर को लंबे समय तक के लिए शून्य के आसपास रोके रखने का प्रयास करता है तथा ऐसी नीतियां अपनाता है जो केंद्रीय बैंक के तुलनपत्र को प्रभावित कर सकें जैसे विनिमय बाजार सहित कुछ बाजारों से परिसंपत्तियों की खरीद करना, ताकि बाजार के मूल्यों को प्रभावित किया जा सके।¹⁰

यहां पर स्पष्ट रूप से गैर-परंपरागत नीतियों की भूमिका है - जब बाजार टूटता है या फिर काफी हद तक निष्क्रिय होने लगता है

¹⁰ इसे अच्छी तरह से पढ़ने के लिए देखें क्लाडियो बोरियो और पी. डिस्याटैट, ‘‘गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियां : एक मूल्यांकन,’’ द मानचेस्टर स्कूल, सं.78, अंक एस1, पृ.53-89, सितंबर 2010.

तब केंद्रीय बैंकों को अपने तुलनपत्र के साथ बाजार में उतरना पड़ता है ताकि बाजार के रुख को मोड़ा जा सके। अहम प्रश्न यह है कि जब इन नीतियों को बाजार की मरम्मत करने से ज्यादा लंबे समय तक लागू रखा जाता है तब क्या होता है, क्या वाकई इससे बाजार टूट जाते हैं। यहां पर लागत अनुपात की तुलना में लाभ की स्थिति कम स्पष्ट है।

उदाहरण के लिए शून्य की ओर उन्मुखता की समस्या को ले लें। चूंकि अल्पकालिक नीतिगत दर को शून्य से नीचे की ओर नहीं धकेला जा सकता, और क्योंकि दीर्घकालिक दरें अल्पकालीन दरों की तुलना में जोखिम प्रीमियम का रास्ता अपनाती हैं, इसलिए केंद्रीय बैंकों को दीर्घकालीन दरों को सीधे-सीधे प्रभावित करने के लिए गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियों का इस्तेमाल करना पड़ता है। जोखिम वहन करने वाले केंद्रीय बैंक द्वारा की गई सीधी कार्रवाई जैसे दीर्घकालीन बांडों की खरीद से शेष दीर्घकालिक परिसंपत्तियों पर उपलब्ध जोखिम प्रीमियम को प्रभावी रूप से कम कर देता है।¹¹

इसके दो प्रभाव पड़ते हैं, पहला यह कि जो अल्पकालिक और दीर्घकालिक परिसंपत्तियों में पुनः संतुलन कर सकते हैं वे अब अल्पकालिक परिसंपत्तियों की धारित करने को तरजीह देंगे क्योंकि इसमें जोखिम समायोजित कर दिया जाता है और यह बेहतर

¹¹ उदाहरण के लिए, क्योंकि ज्यादातर जोखिम से बचने वाले वर्तमान में दीर्घकालिक बांड धारक उसे पहले बेचते हैं और अल्पकालिक परिसंपत्तियां धारित करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

सौदा होता है। इसलिए जैसे ही केंद्रीय बैंक मात्रात्मक सहजता के अंतर्गत बांडों की खरीद बढ़ा देता है, वैसे ही वाणिज्य बैंकों में दीर्घकालिक परिसंपत्तियां बढ़ाने के बजाय गैर-पारिश्रमिक भंडार को धारित करने की लालसा बढ़ जाती है। दूसरा प्रभाव यह है कि ऐसी संस्थाएं जो अल्पकालिक परिसंपत्तियों की ओर नहीं जा सकती हैं जैसे-पेंशन फंड, बांड म्युचुअल फंड, तथा बीमा कंपनियां, वे या तो अपनी परिसंपत्तियों को धारित किए रहेंगी और उन्हें जोखिम के प्रति अपेक्षाकृत कम-क्षतिपूर्ति का नुकसान उठाना पड़ेगा या फिर वे जोखिमपूर्ण परिसंपत्तियों में परिवर्तित हो जाएंगी। इस आचरण को 'प्रतिफल की तलाश' भी कहा जाता है, यह तभी होता है जब अधिक आकर्षक परिसंपत्ति में जोखिम के प्रति अपेक्षाकृत कम-क्षतिपूर्ति न्यूनतर होती है, अथवा संस्थाओं को अपने पोर्टफोलियो में निश्चित सांकेतिक प्रतिफल को पूरा करने की बाध्यता होती है। निश्चित रूप से, इस प्रकार के पोर्टफोलियो को पुनः संतुलित करना पड़ेगा क्योंकि केंद्रीय बैंक संस्थाओं के पोर्टफोलियो से दीर्घकालिक बांडों को खरीदेगा और उनके पास जो नकदी बचेगी उसे उन्हें पुनः लगाना पड़ेगा।

इसमें से कोई भी चीज समस्या नहीं बन सकती है जबतक कि यह ज्ञात है कि हमें कहां रुकना है। दुर्भाग्य से केंद्रीय बैंकों द्वारा इन नीतियों को अपनाने की कुछ मजबूरियां हैं क्योंकि व स्वतः - वित्तपोषक होती हैं (कमर्शियल बैंक ज्यादा से ज्यादा केंद्रीय बैंक रिजर्व को धारित करना चाहते हैं क्योंकि दीर्घकालीन बांड पर जोखिम प्रिमियम घट जाता है)। यदि इस नीति से संवृद्धि नहीं बढ़ती है, तो इसे और अधिक किया जा सकता है। कुल मिलाकर, परिसंपत्ति मूल्यों में बिखराव और निधियों का गलत-आबंटन बढ़ सकता है और यह तब बहुत महंगा पड़ सकता है जब केंद्रीय बैंक इस नीति से बाहर निकलने का निर्णय लेता है।

समान रूप से एक और बात महत्वपूर्ण है, वह यह कि निधि-प्रबंधक विदेशों में अर्जन (यील्ड) तलाश सकते हैं, पैसा भेजने वाले देश की करेंसी का मूल्य गिराकर जिनसे प्राप्तकर्ता देश की करेंसी का मूल्य बढ़ेगा, शायद इतनी तेजी से बढ़ सकता है जितना कि साधारण मौद्रिक नीति से नहीं बढ़ेगा। इससे घरेलू स्तर पर प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी जिससे प्रेषक देश के निर्यात में ऊर्जा पैदा हो सकती है। लेकिन, इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा में वृद्धि करना तथा 'मांग को शिफ्ट' करना विश्व की स्थिरता के काफी विपरीत होगा, खासतौर से तब जब इसका उद्देश्य घरेलू स्तर पर मांग का सृजन करना न हो।

उभरते बाजारों पर फैलता प्रभाव और नाटकीय संकट

यदि गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति (यूएमपी) से मूल देश में घरेलू निवेश या उपभोग में वृद्धि के बिना वित्तीय जोखिम उठाने की

क्षमता बढ़ती है, तो यूएमपी से होने वाले विनिमय दर का प्रभाव मांग को उस देश में शिफ्ट कर देगा जहां यूएमपी नहीं अपनाई गई है, और उनकी वस्तुओं की घरेलू मांग पर ज्यादा क्षतिपूर्क प्रभाव भी नहीं पड़ेगा। यदि ऐसा है, तो फिर विश्व के वित्तीय संकट से पहले उभरते बाजारों की विनिमय दर हस्तक्षेप नीतियों से यूएमपी का काफी साम्य होगा।

वस्तुतः, विश्व-संकट के उपरांत उभरते बाजारों में पूंजी का प्रवाह बहुत ज्यादा था, जबकि उभरते बाजारों का भरसक प्रयास यह था कि विदेशी मुद्रा भंडार को बढ़ाते हुए उस प्रवाह को वापस कर दिया जाए (उभरते बाजारों को 2006 में निवल पूंजी प्रवाह 120 बिलियन अमरीकी डालर की तुलना में 2013 में 550 बिलियन अमरीकी डालर तक पहुंच गया)।¹² ¹³ इन प्रवाहों से स्थानीय लीवरेज बढ़ गया है, यह न केवल सीमा पार के देशों से बैंकिंग प्रवाह के प्रत्यक्ष प्रभाव से है बल्कि परोक्ष प्रभाव से भी है जो विनिमय दर में वृद्धि तथा परिसंपत्ति के बढ़ते मूल्यों से होता है, विशेष रूप से भू-संपदा में, जिससे यह प्रतीत होने लगता है कि उभरते बाजार के उधारकर्ताओं के पास वास्तविकता से अधिक इक्विटी है। 2005 में बर्नानके की जो चिंता उभरते बाजारों से पूंजी के आने वाले प्रवाह से अमरीका में गलत निवेश करने को लेकर थी वही बात उभरते बाजारों में संकट के बाद घटित हो गई क्योंकि औद्योगिक राष्ट्रों से पूंजी का प्रवाह हो रहा था।

क्या 1990 के दशक में उभरते बाजारों में आए संकट को 2000 के दशक में औद्योगिक राष्ट्रों के संकट के रूप में बदला जा सकता था और उसी प्रकार से एक बार फिर 2010 में उभरते बाजारों पर पड़ने वाले प्रभावों को भी, क्योंकि राष्ट्र अपनी समस्याओं को अन्य देशों को निर्यात करते हुए विश्व में अपर्याप्त मांग की समस्या के प्रति प्रतिक्रिया दिखा रहे थे? जुलाई 2013 में 'टेपर टैट्रम' से निश्चित रूप से लगता है कि उभरते बाजार जिनमें भारी मात्रा में चालू खाता घाटा था वे एक बार पुनः प्रभावित हुए थे।¹⁴ क्या पूरा विश्व नाटकीय

¹² वर्ल्ड इकॉनॉमिक आउटलुक डाटाबेस पर आधारित। उभरते बाजारों में शामिल हैं 'उभरते और विकासशील' देश। निवल पूंजी प्रवाह में शामिल है निवल प्रत्यक्ष निवेश, निवल पोर्टफोलियो निवेश, और 'अन्य' निवल निवेश।

¹³ वस्तुतः कमर्शियल बैंकों के आचरण के अनुरूप, उभरते बाजार के केंद्रीय बैंकों की पूंजी अंतर्वाह को देखते हुए अल्पकालिक पेपर धारित करने की इच्छा ने औद्योगिक राष्ट्र के केंद्रीय बैंकों की और आगे भी गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति अपनाने की क्षमता को बढ़ा दिया है। अर्थात् उभरते बाजार के केंद्रीय बैंकों ने सावधानी-भंडार धारित करके विदेशी निवेशकों को चलनिधि उपलब्ध करा दी है।

संकट के घिनौने खेल खेल रहा है क्योंकि प्रत्येक राष्ट्र संवृद्धि को बढ़ाने का प्रयास कर रहा है? पीछे की गई चर्चा को देखें तो यदि ये शायद सही है तो हम इस चक्र को कैसे तोड़ सकेंगे?

अच्छी नीतियां और अच्छा आचरण

एक आदर्श विश्व में, संवृद्धि के लिए भौतिक अनिवार्यता अर्थव्यवस्था की क्षमता को पीछे नहीं धकेलती है। यदि यह स्थिति है तो हम ऐसी दुनिया में शायद नहीं जी रहे हैं। और यदि सामाजिक सुरक्षा की वचनबद्धता है, कर्ज की अतिशयता है तथा न समाप्त होने वाली गरीबी है, तब ऐसी स्थिति में समझदारी यह होगी कि निरंतर संवृद्धि को बढ़ाने के लिए उपाय खोजे जाएं।

स्पष्ट है कि विश्व में कमजोर विकास को देखते हुए दीर्घकाल के लिए ऐसी नीतियां होनी चाहिए जो नवोन्मेष तथा संरचनागत सुधार को बढ़ावा दें जिससे क्षमता में वृद्धि होगी। उसी कमजोर विकास का देश के भीतर वितरण बहुत ही खराब है, इसलिए ऐसी नीतियों की जरूरत है जो घरेलू स्तर पर वितरण की क्षमता तथा अवसर में सुधार लाएं और उससे नवोन्मेष तथा क्षमता निर्माण के प्रोत्साहन पर कोई असर नहीं पड़ना चाहिए।

हालांकि, अल्पकाल में समझदारी से किए जाने वाले निवेश का अत्यधिक महत्व है। औद्योगिक राष्ट्रों में हरित ऊर्जा पहल जैसे कार्बन-कर अथवा एमिशन की सीमा तय करने के साथ उद्योग को इस बात का स्पष्ट संकेत देना कि निवेश कहां किया जाना है, भी इस योग्यता पर निर्भर करता है कि संकेत की सूई सकल निवेश पर हो और पर्यावरण की सुरक्षा के लिए दीर्घकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हो।

अधिकांश उभरते बाजारों में बुनियादी सुविधा में निवेश की बहुत अधिक जरूरत है। हमें अभी भी यह समझने की आवश्यकता है कि परियोजना के चयन को तथा वित्तपोषण में सुधार कैसे लाया जाए - बहुत अधिक सरकारी क्षेत्र के समावेश से ढिलाई पैदा हो जाती है और उसमें अधिक पैसे की जरूरत पड़ने लगती है, वहीं पर बहुत

¹⁴ जो लोग मैक्रो-प्रबंधन के लिए विनिमय-दर के समायोजन को प्रमुखता देने की वकालत करते हैं, उनके लिए यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जिन देशों ने मात्रात्मक सहजता के पूर्व की अवधि में वास्तविक विनिमय-दर को बढ़ने दिया था उन्हें सबसे अधिक वित्तीय स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव उठाना पड़ा है (देखें इचेनग्रीन, बैरी और पूनम गुप्ता (2013), 'टेपरिंग टाक : फेडरल रिजर्व द्वारा प्रतिभूति की कम खरीद की प्रत्याशा का उभरते बाजारों पर प्रभाव', वर्किंग पेपर, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय, बर्केली और प्राची मिश्रा, केनजी मोरियमा, पापा एन डाय और लैम न्यूयेन (2014), 'उभरते बाजारों पर फेड टेपरिंग घोषणा का प्रभाव' अंमुको वार्किंग पेपर)।

अधिक निजी क्षेत्र को शामिल कर लेने से जोखिम बर्दाश्त के बाहर हो सकता है तथा वे मुनाफा कमाने वाले होते हैं। सरकारी और निजी दोनों की भागीदारी में अच्छी तरह से अन्यत्र सफलतापूर्वक किए गए कार्य अनुभव पर आधारित पहल की जानी चाहिए और सरकारी क्षेत्र, निजी क्षेत्र के संपूरक के रूप में कार्य करे।

जी-20 की आस्ट्रेलियाई प्रेसिडेंसी ने एक स्वागत योग्य प्रणाली बनाई है जिसके माध्यम से वे सभी देश उत्तम निवेश प्रथा की भागीदारी कर रहे हैं। वहीं पर, हमें यह ध्यान देना होगा कि बड़े-पैमाने की निवेश परियोजनाओं के लिए संयत जोखिम पूंजी की आवश्यकता होती है जिसकी उभरते बाजारों में कमी है। निजी निवेशकों में वह सहन क्षमता मुश्किल से होती है जो सरकारी या बहुपक्षीय संस्थाओं में होती है। अतः, ज्ञान के आदान-प्रदान के साथ-साथ विश्व के विकास को फायदा तभी पहुंचेगा जब बहुपक्षीय संस्थाओं जैसे विश्व बैंक, अफ्रीका विकास बैंक, तथा एशियाई विकास बैंक के पूंजी आधार को बढ़ाया जाए, ताकि वे उभरते विश्व की आवश्यकताओं के अनुसार उसका कुछ हिस्सा संयत जोखिम, सहन पूंजी प्रदान कर सकें। घरेलू मांग के संबंध में प्रतिस्पर्धा करने के बावजूद, औद्योगिक राष्ट्रों को यह मानना होगा कि विकास बैंक किस प्रकार की महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं और उनकी पूंजी को मजबूत बनाने में मदद कर सकते हैं। वे इतना तो कर ही सकते हैं कि जो देश अपनी पूंजी बढ़ाने और स्वामित्व अधिक करना चाहते हैं उनके रास्ते में बाधा न पैदा करें।

यह स्पष्ट है कि समझदारी से किए गए निवेश पर लाभांश मिलने का अवसर बेहतर होता है, साथ ही जब मैक्रो-आर्थिक नीतियां भी सुदृढ़ हों, और इस प्रकार की नीतियों का कार्यान्वयन तब आसान होता है जब सीमा-पार से पूंजी प्रवाह के प्रतिकूल प्रभाव सीमित होते हैं। इसके लिए नीति बनाने में खेल के नये नियम बनाने की जरूरत होगी।

खेल के नये नियम?

हम घरेलू स्तर पर मांग पैदा करने के लिए किए प्रकार फोकस करें तथा उन राष्ट्रों के साथ इस संकट उत्पन्न करने के नाटकीय खेल से कैसे बचें जो लगातार प्रत्यक्ष विनिमय-दर संबंधी हस्तक्षेप अथवा गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियों (जहां मांग पैदा करने के प्रसारण चैनल बंद होते हैं) के माध्यम अपने विनिमय-दर को कम कर रहे हैं?¹⁵ इस बात का परीक्षण करना शायद फायदेमंद

¹⁵ फैबरिजिओ सैकोमनी द्वारा चिंतनपरक लेख 'मौद्रिकता का फैलता प्रभाव? तेजी और बिखराव? करेंसी युद्ध?' भी देखें, अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक प्रणाली की दुबारा दस्तक, बीआइएस विशेष गवर्नरों की बैठक, फरवरी 2015

होगा और इस प्रकार की कार्रवाई को संगत बताने वाले औचित्य के प्रति चुनौती होगी।

औचित्य 1 : यदि हमारा विकास सुदृढ़ तरीके से हो तो क्या इससे पूरे विश्व की बेहतरी नहीं होगी?

निःसंदेह विश्व की बेहतरी होगी बशर्ते राष्ट्र की कार्रवाइयों से कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़े। किंतु घरेलू स्तर पर विनिमय-दर को कम करके प्राथमिक रूप से घरेलू विकास को प्रभावित करने की समग्र नीति में प्रमुख बिंदु यह है कि ऐसे राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के विकास को पीछे खींच कर कार्य करते हैं और दूसरों के विकास का अवसर नहीं पैदा होने देते हैं।

औचित्य 2 : हम घोर मंदी के दौर से गुजर रहे हैं। हमें ऐसे किसी भी साधन की जरूरत है जो हमारे विकास को छलांग लगाकर आगे बढ़ा दे। एक बार हम मंदी से बाहर आ गए, तो हमारे विकास से अन्य राष्ट्रों को जो भुगतान मिलेगा वह बहुत अधिक होगा।

यह बहुत ही उपयुक्त औचित्य होगा यदि इस प्रकार की नीति का इस्तेमाल एकबारगी हो और एक बार देश विकास संबंधी भय से बाहर निकल आए तो फिर वह अपनी करेंसी के मूल्य को बढ़ने देगा ताकि अपने आयात को खपा सके, और इस प्रकार अपने साथ-साथ अन्य देशों को भी खींच सकेगा। लेकिन, यदि मजबूत होती हुई करेंसी गैर-परंपरागत नीतियों को बने रहने देती है तो देश के प्राधिकारी विकास को वापस छोड़ने के लिए राजी नहीं होंगे क्योंकि उन्होंने उस विकास को अपनी करेंसी का मूल्य घटाकर हासिल किया है, या फिर करेंसी मजबूत होने से घरेलू स्तर पर इस बात के लिए बहुत ज्यादा राजनैतिक शोरगुल मचता है कि विदेशी राष्ट्र अपनी करेंसियों का अवमूल्यन कर रहे हैं, तब ऐसी स्थिति में यह औचित्य संदेहास्पद बन जाएगा। इतना ही नहीं, ऐसी नीतियां जिनसे पूंजी के बाहरी प्रवाह को अन्य देशों में एक ही दिशा में सतत रूप से जाने को प्रोत्साहन मिलता रहेगा तो पूंजी प्रवाह प्राप्त करने वाले राष्ट्र की वित्तीय स्थिरता काफी कमजोर पड़ जाएगी, जो उनकी प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता पर पड़ने वाले प्रभावों के अतिरिक्त होगी। इसलिए यदि ऐसी नीति का एक बार भी प्रयोग किया जाता है तो उसकी अवधि सीमित होनी चाहिए।

औचित्य 3 : हमारे घरेलू जनादेश की यह अपेक्षा है कि हम वह कार्य करें जिससे हमारा मंहगाई संबंधी उद्देश्य पूरा हो सके और गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति तभी आवश्यक मानी जाए जब हम शून्य की ओर नीचे गिरती हुई दर की ओर बढ़ने को रोकना चाह रहे हों।

इस औचित्य की दो कमजोरियां हैं। पहली यह है कि अंतरराष्ट्रीय दायित्व के साथ-साथ यह घरेलू जनादेश आरोपित

करती है। यदि इसे उपयुक्त मान लिया जाए तो कोई भी देश जब कभी स्थिति असुविधाजनक होगी अंतरराष्ट्रीय दायित्वों का सम्मान नहीं करेगा। दूसरी, इसमें यह स्पष्ट रूप से मान लिया गया है कि मंहगाई संबंधी जनादेश को प्राप्त करने का एक ही रास्ता गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति है (यदि यह भी मान लिया जाए कि बढ़ती हुई मंहगाई की स्थिति में गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति सफल रही है, तो भी इस बात के साक्ष्य बहुत कम हैं)।

औचित्य 4 : हम नीति का निर्धारण करते समय शेष विश्व से हमारी अर्थव्यवस्था के संबंध में फीडबैक के प्रभाव को ध्यान में रखते हैं। अतः, हम गैर-परंपरागत मौद्रिक नीतियों का अन्य राष्ट्रों पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में भूलते नहीं हैं।

आदर्श स्थिति यह है कि विश्व का जिम्मेदार नागरिक यह चाहेगा कि एक राष्ट्र बिल्कुल उसी प्रकार कार्रवाई करे जैसे वह पूरे विश्व में बिना किसी सीमा के कर रहा है। ऐसे संसार में, एक नीति-निर्माता को यह आंकना चाहिए कि किसी नीति के समग्र सकारात्मक घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय फायदे, जो एक समयावधि में मिलेंगे, क्या उससे उनकी लागतें वसूल हो जाएंगी। कुछ नीतियों का घरेलू स्तर पर फायदा बहुत अधिक हो सकता है और विदेश में लागत ज्यादा हो सकती है, लेकिन वही नीतियां ऐसे विश्व के लिए उपयुक्त हो सकती हैं जिसकी कोई सीमा न हो क्योंकि उससे नुकसान पहुँचने की तुलना में ज्यादा से ज्यादा लोग लाभान्वित होंगे।

इस परिभाषा को ध्यान में रखा जाए तो औचित्य 4 का अर्थ यह नहीं होगा कि वह केवल विश्व की जिम्मेदार नागरिकता के लिए ही हो क्योंकि एक देश यह ध्यान में रखता है कि वह जो नीतियों बनाता है उससे फैलने वाला प्रभाव क्या होगा और विश्व की प्रतिक्रिया के कारण उसके स्वयं पर 'वापसी प्रभाव' किस प्रकार पड़ेगा। उदाहरण के लिए, राष्ट्र ए उद्योग आई को राष्ट्र बी में अपनी नीतियों के माध्यम से नष्ट कर सकता है, किंतु केवल इतना ही ध्यान में रखेगा कि उद्योग आई के नष्ट होने से उसपर वापसी प्रभाव क्या पड़ेगा जो राष्ट्र ए के निर्यात की खरीद कम कर रहा था।

औचित्य 5 : मौद्रिक नीति जिसका फोकस घरेलू स्तर पर है वह पहले से ही बहुत जटिल है और उसका प्रसार बहुत मुश्किल है। यह बात और भी असंभव तरीके से जटिल हो जाएगी यदि हम यह सोचने का अतिरिक्त भार अपने ऊपर ले लेंगे कि मौद्रिक नीति (गैर-परंपरागत) का अन्य देशों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

इन औचित्यों को विस्तार से सुनने के बाद वास्तव में ऐसा लगता है कि जिम्मेदारियों को त्याग दिया जाए। ऐसा लगता है जैसे मौद्रिक प्राधिकारी पर केवल घरेलू जनादेश का दबाव है, जो ऊपर

दिया गया औचित्य 3 है। परस्पर जुड़े संसार में 'जटिलता' कहकर नहीं बचा जा सकता है।

औचित्य 6 : हम वह करेंगे जो हमें करना है, तालमेल आपको बैठाना है।

समायोजन या तालमेल बैठना कभी भी आसान नहीं होता है, और कई बार तो यह बहुत महंगा पड़ता है - यह भी एक कारण है कि बेन-बर्नानके ने अपने 'बचत की प्रचुरता' भाषण में परिवर्तन का बोझ अमरीका से बाहर के देशों पर डालने की बात कही थी। उभरते बाजारों के पास ऐसी संस्थाएं नहीं हो सकती हैं जो विनिमय-दर अस्थिरता तथा भारी मात्रा में पूंजी-प्रवाह से जुड़े ऋण-वृद्धि के मामले से बचकर निकल सकें - उदाहरण के लिए यदि उभरते बाजार के केंद्रीय बैंक की साख नहीं है तो विनिमय-दर में तीव्र कमी तेजी से मुद्रास्फीति में बदल सकती है, जबकि औद्योगिक राष्ट्र विनिमय-दर में कमी को बड़ी आसानी से सहन कर जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि बहुपक्षीय संस्थाएं जैसे आईएमएफ को चाहिए कि एक जिम्मेदार नीति के लिए 'खेल के नियमों' की पुनः जांच करें और नये नियमों के लिए आम-सहमति विकसित करें। केंद्रीय बैंकों के घरेलू जनादेश चाहे जो भी हों, अंतरराष्ट्रीय जिम्मेदारियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आईएमएफ को चाहिए कि वह प्रत्येक नई गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति (सतत रूप से एकतरफा विनिमय-दर हस्तक्षेप सहित) का विश्लेषण करे और उनसे होनेवाले प्रभावों के आधार पर तथा खेल के सहमत नियमों के अनुसार उन्हें स्वीकार करने या स्वीकार न करने की घोषणा करें। ऐसी नीतियों को रोककर जो प्राथमिक रूप से विनिमय-दर के माध्यम से कार्य करती हैं, पुरानी क्रेदी वाली पहेली की समस्या के लिए भी समाधान प्रस्तुत होगा जो ऐसी नीतियों से जुड़ी हुई हैं और जिससे विनिमय-दर कम होती है - एक बार किसी देश ने इन नीतियों को अपनाया, तो उसके लिए इससे छुटकारा पाना कठिन होता है, (जो देश इन नीतियों को अपनाता है उसे पता चलता है कि उसकी करेंसी का मूल्य बढ़ गया है और मांग घट गई है), इन नीतियों से बाहर निकलना भी कठिन होता है (क्योंकि वर्तमान राष्ट्र की करेंसी मूल्य में तीव्र वृद्धि हो जाती है)। अतः, सामूहिक कार्रवाई की अनुपस्थिति में, इन नीतियों को तभी अपनाया जाएगा जब स्थिति इष्टतम न हो और वह लंबे समय तक जारी रहेगी।

निःसंदेह, लगभग सभी औद्योगिक राष्ट्रों के प्राधिकारियों ने व्यापार-विरोधी वित्त-विरोधी (और केंद्रीय बैंक विरोधी) सस्ते राजनैतिक आंदोलनों के तुष्टीकरण पर ध्यान दिया है, उनमें

अंतरराष्ट्रीय वचनबद्धता के प्रति अडिग रहने की भूख बहुत कम है। हमें उठाए गए इन मुद्दों पर और भी स्पष्ट रूप से बात करने तथा सार्वजनिक बहस करने की जरूरत है, वहीं इस बात को भी ध्यान में रखना होगा कि प्रगति के लिए एक मजबूत राजनैतिक नेतृत्व की भी आवश्यकता होगी।

अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा कवच

उभरती अर्थव्यवस्थाओं को उनपर पड़ने वाले प्रभावों को कम करने के लिए तथा उस मुकाम पर आने के लिए कार्य करना होगा जहां आस्ट्रेलिया या कनाडा खड़े हैं, जो विनिमय-दर में लोच को उस हद तक जाने की अनुमति देते हैं जिससे वे पूंजी अंतर्वाह के साथ समायोजन कर सकें। लेकिन जिन संस्थाओं को इसकी जरूरत है उन्हें यह स्थिति विकसित करने में वक्त लगेगा। तब तक, उभरते बाजारों की परेशानी यह रहेगी कि वे पूंजी की भारी मात्रा को तेजी से एवं स्थिर तरीके से खपाएं, जिसे एक बाधा के रूप में देखा जाना चाहिए, बिलकुल उसी तरह जिस प्रकार से दर शून्य की ओर बढ़ रही होती है, बजाय इसके कि किसी चीज को तेजी से संशोधित कर दिया जाए। इसके बावजूद उभरते बाजार प्रवाहों को खपा लेने के लोभ से परहेज करते हुए एक सुरक्षा कवच होने की आशा अवश्य करेंगे।

एक अन्य रास्ता यह है कि उभरते बाजारों में विदेशी मुद्रा का बार-बार भंडार संचित करने से बचने के लिए अब प्रतिस्पर्धा करने के बजाय सावधानी उपाय के रूप में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक मजबूत सुरक्षा कवच बनाने की जरूरत है। उदाहरण के लिए, एक संभावना आईएमएफ से बिना किसी प्रलोभन के चलनिधि-लाइन सुविधा है, जिसके लिए आईएमएफ द्वारा राष्ट्रों को पहले से अर्हक बना दिया जाता है और उन्हें बता दिया जाता है (शायद निजी तौर पर) कि वर्तमान नीति के अंतर्गत उन्हें आईएमएफ के साथ वार्षिक बातचीत पर संशोधित राशि सीमा में से कितनी राशि की सुविधा मिल सकेगी, और उस राशि में किसी भी प्रकार की, की गई कमी 6 महीने बाद लागू होगी। सामान्य रूप से चलनिधि की कमी हो जाने पर आईएमएफ बोर्ड द्वारा उक्त सुविधा खुल जाएगी (जैसे - जब न्यून दरों की विस्तारित अवधि के बाद मूल राष्ट्र में नीतिगत कठोरता से निवेश प्रबंधक जोखिम उठाने से बचने लगे)।

इसके बदले में, आईएमएफ इस चलनिधि की जरूरत के लिए केंद्रीय बैंकों के साथ मध्यस्थता स्वैप के माध्यम से वित्त उपलब्ध करा सकता है (और इस प्रकार चूक की स्थिति में वह केंद्रीय बैंक की ओर से गारंटी होगी)। इस प्रकार के प्रस्ताव से देशों को चलनिधि हासिल करने के लिए आईएमएफ तक पहुंच बनाना कोई पहेली नहीं

होगी, और उसमें अन्य कोई शर्त नहीं होगी जैसाकि आईएमएफ की अन्य व्यवस्थाओं में होती है और इस प्रकार उन्हें सावधानी उपाय के रूप में स्वीकार कर लेने की ज़्यादा संभावना हो जाती है। यह प्रस्ताव आईएमएफ के लिए पूंजी प्रवाह विपरीत दिशा में हो जाने पर उसके बढ़ते हुए प्रभाव के समय उपयोगी सिद्ध होगा, जो उन देशों के लिए सहायता लेने का निर्धारण करेगा जिनके पास स्वयं, द्विपक्षीय, या बहुपक्षीय चलनिधि व्यवस्था नहीं है और यह इस प्रकार से उनकी एक प्रकार के सुरक्षा कवच तक पहुंच को बेहतर बनाने की दिशा में कार्य करने के समान होगा।

समापन

मेरे विचार से इस समय अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक नीति में जिस तरह से कोई प्रणाली मौजूद नहीं है, वह बहुत बड़े जोखिम का स्रोत है, सतत विकास तथा वित्तीय क्षेत्र दोनों के लिए। यह कोई औद्योगिक राष्ट्र की समस्या नहीं है, न ही उभरते बाज़ार की समस्या बल्कि यह सामूहिक रूप से कार्य करने की समस्या है। हमें मौद्रिक सहजता लाने की स्पर्धा तथा नाटकीय संकट की ओर धकेल दिया गया है।

मैं मंदीकाल की शब्दावली का प्रयोग करना चाहूंगा क्योंकि मुझे भय है कि कमजोर मांग की दुनिया में, हम सब ज़्यादा से ज़्यादा मांग हासिल करने के लिए जोखिमपूर्ण प्रतिस्पर्धा में शामिल हो जाएंगे। इसलिए हम भी जहां गैर-परंपरागत नीतियां समाप्त होने को हैं, वहीं वित्तीय क्षेत्र के लिए जोखिम पैदा कर रहे हैं।

हमें एक सुदृढ़ पूंजी से लैस बहुपक्षीय संस्था की जरूरत है जिसकी वैधता बड़े पैमाने पर हो, जिनमें से कुछ अध्यक्षीय पूंजी प्रदान कर सकें और अन्य खेल के नये नियमों की निगरानी करें। हमें भी बेहतर अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा कवच की जरूरत है। हम में से प्रत्येक को हमारे देश में मुक्त व्यापार, खुला बाज़ार, तथा जिम्मेदार वैश्विक नागरिक बनने की दिशा में कार्य करने के लिए आम सहमति विकसित करनी होगी। यदि हम यह सब प्राप्त कर सकें, हालांकि हाल की आर्थिक घटनाओं ने हमें बहुत तंग-नज़र और अंतरमुखी बना दिया है, तो हम यह मान सकते हैं कि हमने सही मायने में सुदृढ़ रूप से सतत विकास का मंच तैयार कर दिया है जिसकी हम सभी को सख्त जरूरत है।